Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2024 = 8.153
https://www.srjis.com/issues_data/227
Peer Reviewed & Refereed Journal, Jan-Feb 2024, Vol- 12/81
https://doi.org/10.5281/zenodo.10842479

भारतीय संस्कृति के परिपेक्ष्य में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन

लता भोजवानी
शोधार्थी, गांधीवादी विचार व शांति अध्ययन विभाग, केंद्रीय विश्वविद्यालय गुजरात,

Paper Received On: 20 Jan 2024
Peer Reviewed On: 26 Feb 2024
Released On: 01 March 2024

Abstract

संस्कृति किसी भी राष्ट्र के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण और अभिन्न तत्व है। जब बात दीनदयाल उपाध्याय और संस्कृति की आती है तो बात उस मूल सनातन संस्कृति की होती है, जिसकी नींव भारतीय राष्ट्र की अस्मिता पर टिकी है। दीनदयाल उपाध्याय उस संस्कृति की बात करते हैं जिसमें जीवन और उसके विकास का संपूर्ण पहलू मौजूद है, जिसमें समभाव हो। दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन का आधार समग्र है जिसमें व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि और परमेष्टी का समग्र चिंतन है। संस्कृति के बारे में उनके चिंतन का आधार भी समग्र है। दीनदयाल उपाध्याय सनातन संस्कृति के संरक्षक बने। उनके अनुसार भारत ने सम्पूर्ण सृष्टि रचना में एकत्व देखा है एवं भारतीय संस्कृति सनातन काल से एकात्मवादी है और सृष्टि के एक-एक कण में परम्परावलम्बन है। एकात्म मानववाद सिद्धांत के प्रतिपादन व अपने आचरण से उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। यह शोध पत्र भारतीय संस्कृति की अनूठी विशेषता, दीनदयाल उपाध्याय के अनुभव एवं विचारों पर आधारित है। किसी भी शोध कार्य की गुणवत्ता के लिए शोध पद्धति का विशेष महत्व है अतः व्याख्यात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य भारतीय संस्कृति की मौलिकता और विशालता को उजागर करना है।

मुख्य शब्दः भारतीय संस्कृति, राष्ट्र, सनातन संस्कृति, एकात्म मानववाद, व्यष्टि से परमेष्टी

परिचय : पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्वतंत्रता के पश्चात राजनीतिक दल के नेता एवं संगठनकर्ता थे। उपाध्याय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक रहे व भारतीय जनसंघ की संगठनात्मक संरचना की मजबूत नींव रखी। अतः उनके लिए अपरिहार्य था कि देश के सम्मुख उपस्तिथ होने वाली दैनिक समस्याओं,

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

सरकारी रीति नीतियों, चुनावों, आंदोलनों, विपदाओं तथा दल प्रचार आदि बातों की ओर ध्यान देते। दीनदयाल ने भारतीय संस्कृति के संस्कारों तथा जीवनदृष्टि को अपने जीवन में आत्मसात करते हुए राष्ट्र जीवन की स्वाभाविक धारा का दर्शन कराया। दीनदयाल का मानव जीवन की समग्रता का आकलन उनकी चिंतन धारा को परिपूर्ण करता है। मनुष्य की सभी प्रेरणाएँ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), मानव जीवन की परिपूर्णता के मूल आधार (शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा) और पिंड से लेकर ब्रह्मांड तक (व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि और परमेष्टि), सभी के परस्पर सम्बन्धों की श्रंखला दीनदयाल के भारतीय संस्कृति के विचारों में निरूपित होती है। भारतीय संस्कृति केवल संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य में ही नहीं, लोक भाषाओं में भी व्यक्त है, दीनदयाल ने इसका समन्वय किया।

भूमिका : दीनदयाल जी की दृष्टि में 'मानवीय चेतना' एवं कर्म का कोई भी आयाम संस्कृति से बाहर नहीं है। राष्ट्र की राजनीति हमेशा समाज की संस्कृति में निहित रहती है। यानी जैसी संस्कृति होगी वैसी ही राजनीति भी होगी। पंडित जी की सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पीछे की समाजशास्त्रीय अवधारणा भी यही है। वे खुद कहते भी थे कि मैं राजनीति में संस्कृति का राजदूत हूं। संस्कृति ही किसी राष्ट्रीय समाज की पहचान का आधार होती है। संस्कृति शब्द भारत का मौलिक शब्द है, जिसे समझने के लिए सर्वप्रथम 'संस्कार' शब्द को समझना जरूरी है। संस्कार वे अच्छाइयां हैं, जो व्यक्ति अपने सामाजिक परिवेश व वातावरण के प्रभाव से ग्रहण करता है। यही अच्छाइयां फिर व्यक्ति के स्वभाव का अंग बन जाती हैं। इस तरह स्वभाव जनित अच्छाइयों से उत्पन्न सामाजिक कृतियां ही 'संस्कृति' है। यानी संस्कारों द्वारा निर्मित वस्तु ही संस्कृति है।

शोध के उद्देश्य :

1. भारतीय संस्कृति की मौलिकता व विशालता को उजागर करना।
2. भारतीय संस्कृति पर दीनदयाल उपाध्याय जी के विचारों का अध्ययन।

शोध के प्रश्न :

1. क्या भारतीय संस्कृति के परिपेक्ष्य में दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन का आधार समग्र है??

साहित्य समीक्षा :

प्रस्तावित शोध पत्र में सम्बंधित विषय पर निम्न सन्दर्भ ग्रन्थों का भी पुनर्वेक्षण किया गया है :

1. भिषीकर च. प. (2014) "*पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन , खण्ड - 5: राष्ट्र की अवधारणा*" सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली

2. Sunita (2023) "*Pandit Deendayal Upadhyay and Indian Culture*" International Journal of Science and Research (IJSR)

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

3. शर्मा म. च. (2017) *"पंडित दीनदयाल उपाध्याय, कर्तव्य एवं विचार"* प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

4. बघेल श्र. सि. (2021) *"पंडित उपाध्याय उपाध्यायः जीवन दर्शन व एकात्म मानव दर्शन का रेखांकन"* BFC पब्लिकेशन, लखनऊ

5. सिंह अ. (2017) " *मैं दीनदयाल उपाध्याय बोल रहा हूँ*" प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

6. उपाध्याय पं. दी. (2017) *"एकात्म मानववाद तत्व मीमांसा•सिद्धांत•विवेचन"* प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

7. कुलकर्णी श.अ. (2014) " *पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन एकात्म अर्थनीति*" सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली

संस्कृति : वही संस्कृति श्रेष्ठ है, जहाँ मानवीय तत्त्व, भौतिक तत्वों से सर्वोच्च है, वही संस्कति श्रेष्ठ है जहाँ सभी संस्कृतियों का सम्मान होता हो, भारतीय संस्कृति का मूल आधार सहिष्णुता है। जीवन की अनेकता व विविधता को स्वीकारते हुए भारतीय संस्कृति, सांस्कृतिक एकता का परिचायक है। अनेक विदेशी आक्रांताओं और उनके जीवन विविधताओं को अपने में समाहित करते हुए, अपनी मूल संस्कृति को जीवित रखने का साहस भारतीय संस्कृति में ही है। यही विशेषता भारतीय संस्कृति को वैश्विक संस्कृति से अलग करती है। संस्कृति किसी राष्ट्र के जीवन का प्रमुख तत्व होता है। भारतीय जीवन पद्धति में संस्कृति का स्थान सर्वोच्च है या कहें कि भारतीय संस्कृति राष्ट्र जीवन की आत्मा है, जो राष्ट्र को जीवन देती है। भारतीय संस्कृति गतिशील रहती है परन्तु अपनी विशेषताएं संजोए रखती है। राष्ट्र में राष्ट्र भक्ति की भावना का निर्माण करने और उसको साकार रूप देने का श्रेय संस्कृति को ही जाता है।

"राष्ट्र की सांस्कृतिक स्वतंत्रता अत्यंत महत्त्व की है क्योंकि संस्कृति ही राष्ट्र के संपूर्ण शरीर में प्राणों के समान संचार करती है। प्रकृति के तत्त्वों पर विजय पाने के प्रयत्न में तथा मानवानुभूति की कल्पना में मानव जिस जीवन दृष्टि की रचना करता है, वह उसकी संस्कृति है। संस्कृति कभी गतिहीन नहीं होती अपितु वह निरंतर गतिशील है फिर भी उसका अपना एक अस्तित्व है। नदी के प्रवाह की भाँति निरंतर गतिशील होते हुए भी वह अपनी निजी विशेषताएँ रखती है, जो उस सांस्कृतिक दृष्टिकोण को उत्पन्न करने वाले समाज के संस्कारों में तथा उस सांस्कृतिक भावना से अन्य राष्ट्र के साहित्य, कला, दर्शन स्मृति शास्त्र, समाज रचना, इतिहास एवं सभ्यता के विभिन्न अंगों में व्यक्त होती है। परतंत्रता के काल में इन सब पर प्रभाव पड़ जाता है तथा स्वाभाविक प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। आज स्वतंत्र होने पर आवश्यक है कि हमारे प्रवाह की संपूर्ण बाधाएँ दूर हों तथा हम अपनी प्रतिभा के अनुरूप क्षेत्रों का विकास कर सकें। राष्ट्रभक्ति की भावना का निर्माण करने और उसको साकार स्वरूप देने का श्रेय भी राष्ट्र की संस्कृति को ही है, तथा वही राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर मानव की एकात्मकता का अनुभव कराती है।

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

अतः संस्कृति की स्वतंत्रता परमावश्यक है, बिना उसके राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक ही नहीं टिकाऊ भी नहीं रह सकेगी।"[1]

राष्ट्र : "राष्ट्र एक जीव-मान इकाई है। वर्षों-शताब्दियों लंबे कालखंड में इसका विकास होता है। किसी निश्चित भू-भाग में निवास करने वाला मानव समुदाय जब अपने जीवन के विशिष्ट गुणों को आचरित करता हुआ समान परंपरा और महत्त्वाकांक्षाओं से युक्त होता है, सुख-दुःख की समान स्मृतियाँ और शत्रु-मित्र की समान अनुभूतियाँ प्राप्त कर परस्पर हित संबंधों में ग्रसित होता है, संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों की स्थापना के लिए सचेष्ट होता है, और इस परंपरा का निर्वाह करने वाले तथा उसे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिए महान् तप, त्याग, परिश्रम करने वाले महापुरुषों की श्रृंखला निर्माण होती है, तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदायों से भिन्न एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है। इस भावात्मक स्वरूप को ही राष्ट्र कहा जाता है।"[2]

राष्ट्र सामूहिकता की सबसे बड़ी इकाई है। एक राष्ट्र को भी इन चार घटकों की आवश्यकता होनी चाहिए। एक राष्ट्र के अस्तित्व के लिए, एक देश होना चाहिए जिसमें एक भू-भाग और उसमें रहने वाले लोग शामिल हों। भूभाग अपने आप में एक देश नहीं बनाता। जिस भू-भाग को उस पर रहने वाले लोग ही मां के रूप में पूजते हैं, उसे ही देश का दर्जा दिया जा सकता है। दक्षिणी ध्रुव, जहाँ कोई नहीं रहता, उसे देश नहीं कहा जा सकता। लेकिन भारत एक देश है क्योंकि हम, इसके लोग इसे माँ मानते हैं। दूसरी पूर्व शर्त है साथ रहने की इच्छा और उस इच्छा को साकार करने का संकल्प। तीसरा है एक व्यवस्था, नियम और एक संविधान, जिसे हम उचित रूप से धर्म कहते हैं। और चौथा है जीवन के आदर्श और मूल्य। इन तत्वों के योग से राष्ट्र का निर्माण होता है। जिस प्रकार शरीर, हृदय, मन और आत्मा से एक व्यक्ति का निर्माण होता है, उसी प्रकार राष्ट्र का आधार समग्र राष्ट्र, साथ रहने की इच्छा, धर्म और जीवन आदर्श होते हैं।[3]

भारतीय संस्कृति की विशेषता:

सामान्यतः अपने विभिन्न लेखों व भाषणों में दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय संस्कृति को विभिन्न प्रकार से वर्णित किया है। लेकिन वे भारत की कमजोरियों के प्रति भी सचेत थे। "एकांगिता, कालबाह्यता तथा निहित स्वार्थता के अनेक रोग भारत को अंदर से खोखला कर रहे हैं। हमने अपनी प्राचीन संस्कृति का विचार किया है, लेकिन हम कोई पुरातत्त्ववेत्ता नहीं हैं। हम किसी पुरातत्त्व संग्रहालय के संरक्षक बनकर नहीं बैठना चाहते। हमारा ध्येय संस्कृति का संरक्षण नहीं, अपितु उसे गति देकर सजीव व सक्षम बनाना है। हमें अनेक रुढ़ियाँ समाप्त करनी होंगी, बहुत से सुधार करने होंगे।... आज यदि समाज में छुआछूत और भेदभाव घर कर गए हैं, जिनके कारण लोग मानव को मानव समझकर नहीं चलते जो राष्ट्र की एकता

के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं, हम उनको समाप्त करेंगे।"[4] भारतीय संस्कृति के प्रति दीनदयाल के दृष्टिकोण को हम निम्न प्रकार से बिंदुबद्ध करने का प्रयत्न कर सकते है :-

• भारतीय संस्कृति **'संस्कारवादी'** : "संसार में एकता का दर्शन कर, उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचानकर उनमें परंपरानुकूलता का विकास करना तथा उसका संस्कार करना ही संस्कृति है। प्रकृति को ध्येय की सिद्धि के अनुकूल बनाना संस्कृति और उसके प्रतिकूल बनाना विकृति है। संस्कृति प्रकृति की अवहेलना नहीं करती, उसकी ओर दुर्लक्ष्य नहीं करती, बल्कि प्रकृति में जो भाव-सृष्टि की धारणा तथा उसको अधिक सुखकर और हितकर बनाने वाले हैं, उसको बढ़ावा देकर दूसरी प्रवृत्तियों की बाधा को रोकना ही संस्कृति है।"[5]

अतः भारतीय संस्कृति 'संस्कारवादी' है। संस्कारित समाज स्वायत्त समाज होता है। औपचारिक व्यवस्थाओं का बंधन व्यक्ति को कुंठित करने वाला होता है। संस्कारों का नियंत्रण स्वयं स्वीकृत होता है जबकि 'कानून' आरोपित। भारत की 'राज्य विहीनता' का आधार उसकी 'संस्कार' दृष्टि है। इसके साथ ही भारतीय संस्कृति 'समन्वयवादी' भी है। व्यक्ति व समाज में समन्वय, भौतिकता व अध्यात्मिकता में समन्वय, राष्ट्र एवं विश्व में समन्वय, विभिन्न विचारों व पंथों में समन्वय तथा हर प्रकार के संघर्ष को शामिल करने की अद्‌भुत समन्वय क्षमता भारतीय संस्कृति का विशिष्ट लक्षण है।

• भारतीय संस्कृति - **एकात्मवादी**: "भारतीय संस्कृति संपूर्ण जीवन का, संपूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। उसका दृष्टिकोण एकात्मवादी (Integranted) है। टुकड़े-टुकड़ों में विचार करना विशेषज्ञ की दृष्टि से ठीक हो सकता है, लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से नहीं। पश्चिम की समस्या का मुख्य कारण उनका जीवन के संबंध में टुकड़े-टुकड़ों में विचार और फिर उन सबको जोड़ने का प्रयत्न है। हम यह तो स्वीकार करते हैं कि जीवन में अनेकता अर्थात् विविधता है, किंतु उसके मूल्य में निहित एकता को खोज निकालने का हमने सदैव प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न पूर्णतः वैज्ञानिक है।... डार्विन ने 'मत्स्य न्याय' को जीवन का आधार माना। किंतु हमने संपूर्ण जीवन में मूलभूत एकता का दर्शन किया। जो द्वैतवादी रहे उन्होंने भी प्रकृति और पुरुष को एक-दूसरे का विरोधी अथवा परस्पर संघर्षशील न मानकर पूरक ही माना है। जीवन विविधता अंतर्भूत एकता का आविष्कार है और इसलिए उनमें परस्परानुकूलता तथा परस्पर पूरकता है। बीज की एकता ही पेड़ के मूल, तना, शाखाएँ, पत्ते, फूल और फल के विविध रूपों में प्रकट होती है। इन सबके रंग, रूप तथा कुछ-न-कुछ मात्रा में गुण में अंतर होता है। फिर भी उनके बीज के साथ के एकत्व के संबंध को हम सहज ही पहचान सकते हैं।[6]

बम्बई के अपने ऐतिहासिक भाषण में जब दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानववाद' की व्यवस्था प्रस्तुत की, तब बहुत भावपूर्ण शब्दों में उन्होंने अपने व्याख्यान का समापन किया। "विश्व का ज्ञान और आज

तक की अपनी सम्पूर्ण परम्परा के आधार पर हम ऐसे भारत का निर्माण करेंगे जो हमारे पूर्वजों के भारत से भी अधिक गौरवशाली होगा, जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ, सम्पूर्ण मानवता ही नहीं, अपितु सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार कर 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा। यह हमारी संस्कृति का शाश्वत दैवी और प्रवहमान रूप हैं। चैराहे पर खड़े विश्व मानव के लिए यही हमारा दिग्दर्शन हैं। भगवान हमें शक्ति दें कि हम इस कार्य में सफल हों, यही प्रार्थना हैं।"

• दीनदयाल उपाध्याय ने 'संस्कृति' की व्याख्या करते हुए **'चिति'** शब्द का प्रयोग किया है। यह सामाजिक व राष्ट्रीय चित को अभिव्यक्त करने वाला तकनीकी शब्द है। चिति की परिभाषा करते हुए दीनदयाल उपाध्याय अपने एक लेख में लिखते हैं- "राष्ट्र के प्रति भक्ति तथा अपने राष्ट्र के जनसमूह के प्रति सहानुभूति की भावना का मूल कारण न तो हमारी यह स्वार्थ की एकता है और न ही समान शत्रुत्व या मित्रत्व। हमारी देशभक्ति तो राष्ट्र के संपूर्ण जन-समाज के प्रति ममत्व की भावना के कारण है जो कि एकात्मत्व का परिणाम है। व्यक्ति की आत्मा के समान ही राष्ट्र की भी आत्मा होती है। राष्ट्र की इस आत्मा को हमारे शास्त्रकारों ने 'चिति' कहा है।"[7]

संपूर्ण दीनदयाल एवं संघ साहित्य में 'स्व', 'स्वत्व', 'भारतीयत्व', 'राष्ट्रीय आत्मा' आदि शब्दों का बहुतायत से प्रयोग होता है। मनुष्य की आत्मा के समान ही 'चिति' भी अगोचर है। दीनदयाल उपाध्याय मानते हैं कि किसी देशविशेष पर रहने के कारण समाज में ही स्वाभाविक रूप से विकसित होकर इसकी अभिव्यक्ति साहित्य, संस्कृति व धर्म में होती है। इसी से सामाजिक परंपराओं एवं ऐतिहासिक एकता का भी निर्माण होता है। इसलिए केवल विदेशी सत्ता के विरोध मात्र के कार्य को दीनदयाल उपाध्याय देशभक्ति का अथवा राष्ट्रीय कार्य मानने को तैयार नहीं हैं। 'चिति' के इस प्रकाश को उज्ज्वलतर बनाने का कार्य ही देशभक्ति का मुख्य आधार होता है। राष्ट्र को इस आत्मसाक्षात्कार के मार्ग पर ले चलने वाला ही देशभक्त होता है, केवल विदेशियों का विरोध करने वाला नहीं।"[8]

• भारतीय संस्कृतिपरक समाधान को दीनदयाल उपाध्याय ने अपने विचारदर्शन में जिन अंतर्निहित अभिधारणाओं के आधार पर विकसित किया है उनको पारिभाषिक अर्थों में समझना आवश्यक है। जगत की संपूर्णता की दृष्टि से उपाध्याय चार अभिधानों का उल्लेख करते है व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि तथा परमेष्टि।

1.व्यष्टि : आत्मवादी लोगों में ईश्वरवादी व निरीश्वरवादी दोनों ही आते हैं। प्राचीन ग्रीस, चीन व भारत में आत्मवादी विचारकों का बाहुल्य था। व्यक्ति आत्मवान् होने के कारण स्वयं समर्थ भी है तथा 'आत्मा' परमात्मा का अंश होने के कारण 'परमसत्ता' के अंतर्गत भी है। शरीर के अधिष्ठान के बिना आत्मा 'अव्यक्त' रहती है तथा आत्माविहीन शरीर भी अव्यक्त ही रहता है। अतः आत्मा व शरीर के मेल से ही 'व्यष्टि' अपने को 'व्यक्त' करती है। इसलिए 'व्यक्ति' संज्ञा का सृजन हुआ। मनुष्य आत्मा का व्यक्त रूप

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

है। आत्मवादी सामान्यतः नैतिकतावादी एवं अराज्यवादी होते हैं। दीनदयाल के अनुसार शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा के समुच्चय का नाम व्यष्टि है।

अधिभौतिक शरीर तथा आध्यात्मिक चेतना (आत्मा) मिलकर 'मन' तथा 'बुद्धि' को प्रकाशित करते हैं। इन चारों के संतुलन को ही वे 'मानव' का व्यक्तिकरण मानते हैं। यह 'व्यष्टि' है। उपाध्याय के अनुसार व्यक्ति न तो पृथक् रूप से 'पूर्ण सत्ता' है तथा न हीं' अपूर्ण वरन् वह समष्टि तथा सृष्टि के साथ 'एकात्म' सत्ता है। सृष्टि, समष्टि एवं व्यष्टि एक 'अविभक्त' इकाई है। उनके अनुसार व्यक्ति समाज का दृश्यमान प्रतिनिधि होता है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। उनके व्यक्ति विचार का केंद्रबिंदु यह है कि जब हम व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास का विचार करे तो यह चतुरायामी होना चाइये, एकांगी नही तथा वह समाज से पृथक नही वरन् एकात्म होना चाइए।

2. समष्टि : उपाध्याय के अनुसार समाज एक जीवमान एवं प्राकृतिक इकाई है। वह केवल व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं है। समाज बनते नहीं हैं, पैदा होते हैं। समाज का भी अपना एक 'सामूहिक मन' होता है, सामूहिक बुद्धि होती है, उसकी एक सामान्य इच्छा भी होती है। सामान्यतः जब उपाध्याय समाज की बात करते है तो वे राष्ट्रीय समाज की बात करते है। राष्ट्रीय समाज को वे संसार की स्वाभाविक इकाई मानते है। व्यक्तियों का सामूहिक व्यक्तित्व है। अतः व्यक्ति बनाम समाज अथवा समाज बनाम व्यक्ति के समीकरणों को दीनदयाल बौद्धिक विभ्रम मानते है।

3. सृष्टि - परमेष्टि : सृष्टि का अर्थ है 'रचना'। यह संसार ब्रह्म की 'सृष्टि' है। वैदिक परंपरा के अनुसार सृष्टि के कर्ता 'ब्रह्मा', भर्ता अर्थात पालनकर्ता 'विष्णु' और संहार करने वाला 'महेश' है। यह कर्ता, भर्ता व संहर्ता की ईश्वरीय सत्ता ही 'परमेष्टी' है। इस सन्दर्भ में उपाध्याय कहते हैं- "समाज व राष्ट्र स्वयंभू इकाई है। राष्ट्र के आगे सृष्टि तथा सृष्टि को व्याप्त करने वाली है परमेष्टि। इन सबकी अलग-अलग सत्ताएँ हैं, जैसे कि व्यक्ति की होती है। इन सत्ताओं का अलग-अलग स्वरूप न पहचानते हुए, किसी एक को ही पूर्ण मानकर विचार करने वाले 'व्यक्तिवादी' या 'समाजवादी' लोग एकांगी अवधारणाओं वाले हैं।"[9] इसी प्रकार 'विश्ववादी' या 'परमात्मावादी' लोगों के बारे में भी कहा जाता है।

'व्यक्तिवादी', 'समाजवादी', 'विश्वासवादी' और 'परमवाद', ये सभी उपाध्यायों की एकांगी संज्ञाएँ हैं, मूलतः वे 'समग्रता' या 'एकात्मवाद' के समर्थक हैं। व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि वा परमेष्टि की चार सत्ताओं का उल्लेख तो वे करते हैं लेकिन सृष्टि वा परमेष्टि की प्रमुखता नहीं होती। दार्शनिक उपाध्याय मुख्यतः राष्ट्रवादी हैं, मूलतः सृष्टि की सत्ता को स्वीकार करते हुए भी 'समष्टि' सत्ता के आगे 'सृष्टि' सत्ता के साथ मानवता एकता को व्यावहारिक नहीं मानते है।

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

• **'धर्म'** भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। धर्म के कारण भारत में राजा, प्रजा, समाज, व्यक्ति सभी सुसंयमित हुए, कोई भी उच्छृंखल नहीं हो सका। प्रकृति के शाश्वत व खोजे हुए नियम धर्म है। भारतीय संस्कृति मजहबवादी नहीं है। वह किसी पुस्तक या व्यक्ति को अंतिम प्रमाण नहीं मानती। इसका वैशिष्ट्य है: वादे वादे जायते तत्त्व बोधाः (तत्त्व का बोध विचार-विमर्श से होता है), इसीलिए भारतीय परंपरा उपनिषदों व दर्शनों की परंपरा है।

• भारत का समाज-दर्शन **'विराटपुरुषवादी'** है। संस्कृति सिद्धांत 'चितिं मूलक है, राष्ट्र 'संस्कृतिवादी' तथा व्यक्ति 'आत्मवादी' है। भारतीय संस्कृति मानव की 'चतपुरुषार्थी' आवश्यकताओं की प्रतिपादक है, जो शाश्वत, परिस्थिति निरपेक्ष एवं मनुष्य की सकारात्मक आवश्यकताएँ हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का संकलित विचार एकात्म मानव की नियति है।

• दीनदयाल उपाध्याय पश्चिम की विकृति के प्रति सावधान थे, भारतीय संस्कृति के उपासक थे। उनकी भारतीय प्रकृति समन्वय दृष्टिवाली थी, अतः न वे किसी विदेशी विचार को एकदम हेय मानते थे तथा न ही हर स्वदेशी चीज को वरेण्य। उनका सूत्र था, हम मानव के ज्ञान और उपलब्धियों का संकलित विचार करें। इन तत्त्वों में जो हमारा है उसे युगानुकूल और जो बाहर का है उसे देशानुकूल ढालकर हम आगे चलने का विचार करें। 'स्वदेशी' को युगानुकूल व विदेशी को 'स्वदेशानुकूल' बनाने की अपनी मानसिकता के कारण उन्होंने कहा, "हम भारत को न तो किसी पुराने समय की प्रतिच्छाया बनाना चाहते हैं और न रूस या अमेरिका की अनुकृति।"[10]

अतः हम कह सकते है कि पश्चिमी दर्शन अधूरे हैं। वे जीवन को समग्रता से नहीं देखते और एकांगी होते हैं। इसलिए हम उन्हें नहीं मानते। भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि यह जीवन को उसके सभी आयामों में देखती है।

निष्कर्षः भारतीय संस्कृति विश्व की एक ऐसी संस्कृति जिसमें संपूर्णता समाहित है। जीवन व सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार किया गया है। हम अपनी संस्कृति को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुभव कर सकते है। हमारी संस्कृति मूलतः सामाजिक है। इसमें व्यक्ति व समष्टि का संस्कृति के साथ गहरा संबंध है, जिसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। यहाँ संस्कृति में ही समाज की आत्मा का प्रकटीकरण होता है। हमारी भारतीय संस्कृति को सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह एकात्ममानववादी है। और इसमें जीवन का समग्र व संकलित विचार किया जाता है। भारतीय संस्कृति हजारों वर्षों की संस्कृति है, परन्तु रूढ़िवादी नहीं है, बस हमें मात्र अपनी संस्कृति पर आने वाली चुनौतियों से सचेत रहना है कि, कैसे भावी भारत में, अपनी मूल संस्कृति विध्यमान रहे। अपनी संस्कृति की मौलिकता बनी रहे, इसकी मानवीय

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

गुणों का अनुकरण होता रहे, और भारतीय संस्कृति सदैव वैश्विक संस्कृति को नेतृत्व देती रहे, ऐसा विचार हमें करते रहना है।

सन्दर्भ सूचि :

अग्निहोत्री, सं. रामशंकर एवं शुक्ल, भानुप्रताप *"राष्ट्र जीवन की दिशा दीनदयाल उपाध्याय"* लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; *2008;* पृ. *33-34*

अग्निहोत्री, सं. रामशंकर एवं शुक्ल, भानुप्रताप *"राष्ट्र जीवन की दिशा दीनदयाल उपाध्याय"* लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; *2008;* पृ. *36*

डॉ बर्थवाल, हरिश्चंद्र *"पंडित दीनदयाल उपाध्याय: व्यक्तित्व एवं जीवनदर्शन"* दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. *72*

एकात्म दर्शन, अध्याय *4 "राष्ट्रजीवन के अनुकूल अर्थ रचना"* दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. *72*

डॉ. केसरी, अर्जुनदास *"भारतीय संस्कृति के प्रबल पक्षधर : पं. दीनदयाल उपाध्याय"* पत्रिका -उत्तर प्रदेश संदेश, प्रकाशक *:* सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, सितंबर *1991;* पृष्ठ *-82*

एकात्म दर्शन, अध्याय *1 "राष्ट्रवाद की सही कल्पना"* दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. *10*

उपाध्याय, दीनदयाल *"राष्ट्रधर्म"* अंक *3-4,* कार्तिक पूर्णिमा, *2004,* पृ.*125*

उपाध्याय, दीनदयाल *"राष्ट्रधर्म"* अंक *3-4,* कार्तिक पूर्णिमा, *2004* पृ. *126*

उपाध्याय, दीनदयाल , दिनांक *10-08-1961* का बौद्धिक वर्ग, पृ. *112*

एकात्म दर्शन, अध्याय *4, "राष्ट्रजीवन के अनुकूल अर्थ रचना"* दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. *73*

Cite Your Article as

Laata Bhojwani. (2024). BHARTIY SANSKRUTI KE PARIPEKSH MAIN PANDIT DINDAYAL UPADAY KA CHINTAN. In Scholarly Research Journal for Interdisciplinary studies (Vol. 12, Number 81, pp. 200–208). Zenodo. https://doi.org/10.5281/zenodo.10842479

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies